अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर–272202

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेलः skt_gpu@yahoo.com

पत्रांकःमेमो / अ0बौ0के0 / 07 / 2020 दिनांक 21.04.2020

पिछले प्रबोधन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि पतंजलि के अनुसार जब तक हमें समग्र नैराश्य की अनुभूति नहीं होती तब तक हम योग में प्रविष्ट नहीं हो सकते हैं। समग्र नैराश्य, निराशावाद की स्थापना नहीं है बल्कि यह उस स्थिति का द्योतक है जब हमारे लिये आशा एवं निराशा दोनों अप्रासंगिक हो जाते हैं। सभी कभी न कभी निराश या असंतुष्ट होते हैं लेकिन यह निराशा या असंतुष्टि वास्तविक नहीं होती क्योंकि हम किसी न किसी वस्तु, स्थिति या घटना के कारण इनका अनुभव करते हैं जो हमारे अनुरुप या अनुकूल नहीं होती अर्थात हमारी निराशा या असंतुष्टि अतीत की किन्हीं आशाओं के संदर्भ में ही होती है जो पूरी नहीं हुई है लेकिन हम यह मान लेते हैं कि हमारे प्रयासों में ही कोई कमी रह गयी होगी जिससे आशा पूरी नहीं हुई और हम पुनः एक बार और तल्लीनता एवं प्रगाढ़ता के साथ उस आशा की पूर्ति करने में लग जाते हैं। स्पष्ट है कि यह निराशा या असंतुष्टि का भाव सच्चा नहीं था बल्कि यह कुछ आशाओं के पूरा न हो पाने का मात्र परिणाम था क्योंकि निराशा के अन्दर ही हमारी यह आशा भी विद्यमान थी कि और प्रयास के द्वारा हम सफल हो सकते हैं। हम किसी आशा विशेष के पूरा न हो पाने के कारण निराशा का अनुभव करते हैं, न कि आशा मात्र के प्रति निराशा का अनुभव। आशा मात्र के प्रति निराशा ही योग में प्रवेश का प्रस्थान बिन्दु होता है और यह प्रवेश मानसिक या वैचारिक न हो अस्तित्वगत होता है – यह प्रवेश अनुशासन में प्रवेश है।

अनुशासन, बाह्य आरोपित व्यवस्था न हो, स्वयं के भीतर एक व्यवस्था का निर्माण है क्योंकि जैसे हम हैं वह एक अव्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हमारे भीतर अनेक 'मैं', अनेक 'अहं' होते हैं और इसीलिए हम अपने अस्तित्व की इस गड़बड़ी के प्रति सचेत हो ही नहीं पाते क्योंकि 'सचेत' कौन होगा? क्योंकि वहाँ कोई 'केन्द्र' है ही नहीं; इसीलिए पतंजलि 'अथ' – उस स्थिति, जिसके पश्चात हम योग में प्रविष्ट हो सकते हैं, के तुरन्त बाद 'अनुशासन' की बात करते हैं जिससे हम अपने भीतर 'एक केन्द्र' का निर्माण कर सकने में सक्षम हो सकें। अनुशासन पद द्वारा पतंजलि किसी वाह्य नियम या आरोपण की बात नहीं करते अपितु उस अवस्था की तरफ संकेत करते हैं जो *आशा एवं निराशा, दोनों की व्यर्थता की अनुभूति से उत्पन्न गहरे विश्राम का द्योतक है।* हम जब इस तथ्य के प्रति जागरूक, सचेत हो जाते हैं कि ऐसा कुछ भी नहीं है जो भविष्य में घटित होगा (क्योंकि भविष्य जब भी आता है तो वर्तमान के रुप में ही) तब हमारे लिए कंपित होने का कोई कारण नहीं रह जाता, हमारी सारी गति, बेचैनी समाप्त हो जाती है।

सुशील कुमार तिवारी
आचार्य एवं विशेष कार्याधिकारी
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र

मो0नं0: 9140318839,
9415245707
ईमेल: skt_gpu@yahoo.com

मनुष्य की विडम्बना यही है कि उसकी चेतना को इस प्रकार संस्कारित किया गया है कि उसके जीने का कोई न कोई लक्ष्य, उद्देश्य होना चाहिए। हमें बचपन से ही माता–पिता, विद्यालय, समाज आदि के द्वारा यह निर्देशित किया जाता है कि हमें सदैव आगे बढ़ना है, तरक्की करना है, अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए न केवल कठोर परिश्रम करना है बल्कि येन–केन–प्रकारेण उसे प्राप्त करना है – सफल होना है। निश्चित ही यह प्रतिमान (paradigm) तनाव, चिन्ता की तरफ ही ले जाने वाला है क्योंकि किस लक्ष्य की प्राप्ति को हम अपने सफल होने की कसौटी मानेंगे? ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि महत्वाकांक्षा की कोई सीमा नहीं होती और महत्वाकांक्षा अनिवार्यतः संघर्ष, प्रतियोगिता में परिणत हो जाती है और हम अन्य मनुष्यों को अपने समान मनुष्य न मान कर प्रतिद्वंदी, विरोधी मानने लगते हैं और उन्हें पीछे छोड़ते हुए आगे बढ़ना चाहते हैं।

मेरे कहने का आशय यह कदापि नहीं है कि हम कोई लक्ष्य ही निर्धारित न करें बल्कि मैं केवल यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि कोई भी लक्ष्य जिसमें बाह्य उपलब्धि की आशा निहित है, अनिवार्यतः नैराश्य की तरफ ले जाती है।

पतंजलि ‘अथ योगानुशासनम्’ सूत्र द्वारा यह आह्वान करते हैं कि आज प्रतिमान विस्थापन (paradigm shift) कहीं अधिक आवश्यक हो गया है क्योंकि अभी तक मानवीय ‘आशा’ की संरचना, उसके निहितार्थ को ही ठीक ढंग से नहीं समझा गया। हम यह समझ ही न पायें कि *‘‘अपेक्षा ही समस्त दुःख का कारण है’’।* विज्ञान के फलस्वरुप आज मनुष्य का भौतिक जीवन जितना समृद्ध हो गया है ठीक उसके विपरीत उसका आंतरिक जीवन दरिद्र हो गया है; वस्तुतः मनुष्य की भौतिक समृद्धि एवं आंतरिक दारिद्र्य में व्युत्क्रमानुपाती संबंध दिखाई देता है।

योग द्वारा प्रस्तावित प्रतिमान विस्थापन (paradigm shift) ही वह आशा की किरण है जिससे इस धरा पर मनुष्य के अस्तित्व एवं उसकी गरिमा को सुरक्षित रखा जा सकता है। इसे संक्षेप में निम्नलिखित रुप से व्यक्त कर सकते हैं :–

- हमें एक अव्यवस्था, भीड़ के स्थान पर लयवद्ध होना होगा, हमें अपने केन्द्र को जानना होगा (जैसा पिछले प्रवोधनों में संकेत किया गया है) क्योंकि केन्द्र को पाये बिना हम जो कुछ करते हैं या करेंगे वह व्यर्थ ही होगा।

- जब हम आंतरिक लयवद्धता प्राप्त कर लेते हैं, अन्दर कोई भीड़, अनेक 'अहं' नहीं रह जाते तो हमें पहली बार न केवल 'घर' का अनुभव होगा बल्कि इसी के साथ आनन्द की अनुभूति होगी क्योंकि पहली बार हमारी घर वापसी होगी।
- जब हमें अपने भीतर ठोस केन्द्र का अनुभव, उसकी निर्मिति हो जायेगी तो हम जो भी करेंगे वह शुभ होगा, कल्याणकारी होगा। ***अपने केन्द्र की अनुभूति स्वानुभूति से जहाँ हम अपनी भावनाओं को भी संरचना को जान कर समझ लेंगे वहीं दूसरे की भावनाओं को भी अत्यन्त सहजता से जान लेंगे क्योंकि केन्द्र तो सभी का एक ही होता है।***

  अभी तक समाज सुधार, क्रान्ति के जितने भी प्रयास हुए, वे इसीलिए अभीष्ट नहीं प्राप्त कर पाये क्योंकि उनके पीछे सम्भवतः ऐसे लोग हो सकते हैं जिन्हें ''स्व–केन्द्र'' का बोध ही न रहा हो। वे स्वयं अन्दर से केन्द्रस्थ नहीं रहे होंगे, इसीलिए उन्होंने जो भी किया उससे लोगों के दुःख में बढ़ोत्तरी ही हुई, क्योंकि केवल करूणा और सेवा ही सहायक नहीं होती।

  अपने केन्द्र को अनुभूत किये गये व्यक्ति की करूणा गुणात्मक रुप से केन्द्र को अनुभूत न किये गये व्यक्ति (जो वास्तव में एक भीड़ होता है) की करूणा से भिन्न होती है क्योंकि भीड़ से उठी करूणा भी हानि कारक, उपद्रव पैदा करने वाली होती है।
- जब हम अपने केन्द्र को जान लेते हैं तो जीवन में एक स्वाभाविक नैसर्गिक अनुशासन आ जाता है जिसके तीन परिणाम होते हैं– हमारे में होने की क्षमता, जानने की क्षमता एवं सीखने की क्षमता का विकास हो जाता है।

इस बिन्दु की विस्तृत विवेचना अगले प्रवोधन में की जायेगी।

सुशील कुमार तिवारी
(विशेष कार्याधिकारी)
अन्तरराष्ट्रीय बौद्ध केन्द्र
सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु,
सिद्धार्थनगर।